जनसत्ता

संघर्ष अविराम

जम्मू-कश्मीर में नियंत्रण रेखा (एलओसी) पर पाकिस्तान की ओर से रोजाना जिस तरह की गोलीबारी हो रही है, उससे यही लगता है कि पाकिस्तान को इसके नतीजों से कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर इस पर भारत भी वैसी ही प्रतिक्रिया देगा तो हालात जटिल होंगे। पूरे जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान से लगने वाली सीमा पर ऐसे हालात गंभीर चिंता का विषय इसलिए हैं कि इसका सबसे ज्यादा नुकसान इन इलाकों में रहने वालों को उठाना पड़ रहा है और निर्दोष लोग पाकिस्तानी फौज की गोलीबारी का शिकार हो रहे हैं। सोमवार को पाकिस्तान की ओर से दिन भर हुई गोलीबारी में सीमा सुरक्षा बल का एक इंस्पेक्टर शहीद हो गया और एक बच्ची सहित एक महिला की मौत हो गई। अभी तक माना जा रहा था कि पुलवामा के आतंकी हमले के बाद भारत ने पाकिस्तान को जो सबक सिखाया, उसका कुछ असर होगा। लेकिन लगता है पाकिस्तान अब खिसियाहट की स्थिति में ऐसी गतिविधियां जारी रखे हुए है जिनसे भारत को उकसाया जा सके।

हालांकि इस तरह की हरकतें करना पाकिस्तान के लिए नई बात इसलिए नहीं है कि संघर्ष विराम के दौरान भी वह सीमा क्षेत्र में गोलीबारी करने से बाज नहीं आता। ऐसा लगता है कि उसके लिए संघर्षविराम अर्थहीन है। पिछले चार साल के आंकड़े बता रहे हैं कि पाकिस्तान की ओर से नियंत्रण रेखा के उल्लंघन और गोलीबारी की घटनाएं लगातार बढ़ी हैं। वर्ष 2015 में नियंत्रण रेखा के उल्लंघन की चार सौ पांच, 2016 में चार सौ उनचास, 2017 में सात सौ इकहत्तर बार और 2018 में दो हजार तीन सौ छत्तीस यानी औसतन छह से सात बार रोजाना उल्लंघन और गोलीबारी की घटनाएं हुईं। इसके अलावा, सोमवार तड़के पंजाब से सटी सीमा के पास पाकिस्तान के एफ-16 विमानों ने उड़ान भर कर दहशत पैदा करने की कोशिश की। ये विमान खेमकरण सेक्टर के काफी करीब तक आ गए थे। माना जा रहा है कि भारतीय लड़ाकू विमानों की तैनाती के बारे में टोह लेने के मकसद से यह किया गया था। पिछले महीने भी भारतीय सेना ने बीकानेर सेक्टर में एक पाकिस्तानी ड्रोन को मार गिराया था। ये घटनाएं इस बात का प्रमाण हैं कि पाकिस्तान ने भारत के प्रति कोई रुख नहीं बदला है, बल्कि वह भारत को अशांत करने में लगा है।

दूसरी ओर, हिज्बुल मुजाहिदीन और जैश-ए-मोहम्मद जैसे संगठन घाटी में अपनी गतिविधियां जारी रखे हुए हैं। हाल में पुलवामा आतंकी हमले जैसा ही सीआरपीएफ के काफिले पर एक और आत्मघाती हमला करने की तैयारी थी। लेकिन जिस कार में जिलेटिन की छड़ें, अमोनियम नाइट्रेट, सल्फर, यूरिया जैसे विस्फोटक रखे थे, हमलावर से उसका ट्रिगर नहीं दब पाया और हादसा होने से बच गया। यह साजिश हिज्बुल की थी। लेकिन हैरानी की बात यह है कि इस हमले की साजिश के बारे में भी पहले कोई खुफिया सूचना नहीं मिल पाई। इसे संयोग ही कहा जाएगा कि कार में आग लगने के बाद आतंकी भाग निकला, जिसे तीन दिन बाद पुलिस ने पकड़ा। इससे पता चलता है कि घाटी में आतंकियों के खिलाफ सुरक्षा बलों और सेना का अभियान भले ही जारी हो, लेकिन आतंकी ताकत के साथ अपनी मौजूदगी दर्ज करा रहे हैं। आतंकी संगठन सुरक्षा बलों को लगातार निशाना बनाने की साजिश रच रहे हैं। उनकी रणनीति सेना और सुरक्षा बलों को नुकसान पहुंचा कर मनोबल तोड़ने की है। पुलवामा हमले के बाद जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल ने इस बात को माना था कि खुफिया तंत्र की चूक की वजह से वह आतंकी हमला हुआ। जाहिर है, घाटी में आतंकियों की बढ़ती गतिविधियां कहीं न कहीं खुफिया तंत्र की कमजोरी का भी नतीजा हैं।

फर्जी पर पाबंदी

आज सूचना माध्यमों के विस्तार के दौर में निश्चित रूप से सोशल मीडिया का अपना महत्त्व है और इसका सकारात्मक इस्तेमाल लोगों को ज्ञान के स्तर पर समृद्ध कर सकता है। लेकिन इसी दौर में यह भी हुआ है कि सोशल मीडिया के अलग-अलग मंचों पर नियंत्रण के ढीले नियमों के चलते इस पर अपनी पहुंच बनाने वालों के बीच इसके दुरुपयोग के मामले भी सामने आने लगे। निजी स्तर पर कुछ लोगों की निराधार बातों से नुकसान की ही स्थिति बन रही थी, लेकिन जब से फेसबुक या ट्विटर जैसे सोशल मीडिया के मंचों का संगठित रूप से इस्तेमाल किया जाने लगा है, तब से इसके खतरे बढ़े हैं। हाल के दिनों में फेसबुक, वाट्सऐप, इंस्टाग्राम और ट्विटर पर गलत सूचनाओं का अंबार देखा गया और इससे व्यापक स्तर पर लोगों के बीच भ्रम फैलने लगे। यही वजह है कि फेसबुक, वाट्सऐप और इंस्टाग्राम जैसे मंचों को नियंत्रित करने के लिए आवाजें उठने लगी थीं। इसी के मद्देनजर सोमवार को फेसबुक की ओर से अलग-अलग राजनीतिक दलों और अन्य संगठनों के पेज और सामग्रियों के खिलाफ एक बड़ी कार्रवाई की है।

खबरों के मुताबिक फेसबुक ने कांग्रेस और भाजपा से जुड़े करीब सात सौ पेजों और अकाउंटों को हटा दिया है, जिन पर फर्जी सूचनाएं प्रसारित की जा रही थीं। इनमें छह सौ सत्तासी पेज और खाते कांग्रेस के आइटी सेल से जुड़े बताए जा रहे हैं, जिनके दो लाख से ज्यादा फॉलोअर थे। इसी तरह भाजपा से जुड़े पंद्रह पेजों और खातों को हटा दिया गया है, जिनके करीब साढ़े छब्बीस लाख फॉलोअर थे। फेसबुक के मुताबिक इन पेजों और खातों के जरिए लगातार ऐसी अप्रामाणिक सूचनाएं, तस्वीरें और ब्योरे प्रसारित किए जा रहे थे, जिनका हकीकत से कोई वास्ता नहीं है। लेकिन इनके फॉलोअरों की बड़ी तादाद को देखते हुए यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उनके बीच ऐसी आधारहीन सूचनाओं का क्या असर हो रहा होगा। इसके अलावा, पाकिस्तान से चलाए जा रहे फेसबुक और इंस्टाग्राम के एक सौ तीन पेज, ग्रुप और खाते भी हटा दिए गए हैं, जिन पर भारत सरकार, भारतीय सेना और नेताओं के बारे में आपत्तिजनक पोस्ट किए गए थे। यह छिपी बात नहीं है कि सोशल मीडिया पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है जो किसी सूचना या ब्योरे की सच्चाई की पुष्टि करना जरूरी नहीं समझते, लेकिन उसके आधार पर अपनी राय बना लेते हैं।

जाहिर है, यह स्थिति राजनीतिक दलों के लिए सुविधाजनक है, क्योंकि इससे ज्यादातर पार्टियों को चुनावों में ज्यादा से ज्यादा वोट और जीत हासिल करने के लिए लोगों की राय को अपने पक्ष में मोड़ने में मदद मिल रही थी। लेकिन क्या यह एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए नुकसानदेह नहीं है, जिसमें झूठी सूचनाओं के आधार पर लोगों का समर्थन हासिल किया जाता है? मुख्यधारा के समाचार माध्यमों के समांतर जब डिजिटल इंडिया के नारे के साथ सोशल मीडिया का विस्तार हो रहा था, तब यह उम्मीद की गई थी कि लोगों के बीच सूचनाओं और खबरों की सत्यता परखने की प्रवृत्ति को और मजबूती मिलेगी। विडंबना यह है कि ज्यों-ज्यों इस माध्यम तक लोगों की पहुंच का दायरा बढ़ा है, इसका बेजा इस्तेमाल भी बढ़ता गया है। आधुनिक तकनीकी और संचार माध्यमों के उपयोग के मामले में पहले से ही कम परिपक्व समाज में यह स्थिति घातक भी साबित हो सकती है। इसलिए इस माध्यम के व्यापक असर को देखते हुए इसके उपयोग को लेकर भी एक सीमा तय करने की जरूरत है। अभिव्यक्ति की आजादी अधिकार है, लेकिन झूठी सूचनाओं के जरिए लोगों की राय को प्रभावित करने को किसी लिहाज से सही नहीं कहा जा सकता।

कल्पमेधा

वे लोग जो अच्छाई करने में बहुत ज्यादा व्यस्त होते हैं, स्वयं अच्छा होने के लिए समय नहीं निकाल पाते।
-रवींद्रनाथ ठाकुर

आधी आबादी का सवाल

मोनिका शर्मा

हमारे देश में सबसे ज्यादा बदलाव की दरकार समाज में मौजूद परंपराओं, रूढ़ियों और भेदभाव भरी मानसिकता की जकड़न को लेकर है। बेटे और बेटी में किए जाने वाले भेद की मानसिकता के चलते आज भी दूर-दराज के गांवों में बेटियों की शिक्षा और स्वास्थ्य को महत्त्व नहीं दिया जाता। आज भी हमारे परिवारों में महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को व्यवस्थागत समर्थन मिलता है।

हमारे देश में यौन हिंसा की जड़ें इतनी गहरी हैं कि आंकड़ों से लेकर आम परिवेश तक यह दंश साफ नजर आता है। अफसोस कि शिक्षा और जीवनशैली में आए तमाम बदलावों के बावजूद स्त्रियों के प्रति मौजूद इस मानसिकता में कोई फर्क नहीं आया है। लेकिन सुखद बात है यह कि महिलाएं अब अपनी इस पीड़ा को लेकर मुखर हुई हैं। हाल में यौन हिंसा को लेकर जागरूकता लाने के उद्देश्य से 'गरिमा यात्रा' निकाली गई। देश के चौबीस राज्यों और दो सौ जिलों से गुजरते हुए दस हजार किलोमीटर पैदल चल कर राजधानी दिल्ली पहुंची इस यात्रा में ऐसी पच्चीस हजार महिलाएं शामिल हुईं जो यौन हिंसा की पीड़ा झेल चुकी हैं। गौरतलब है कि ऐसी ही एक पदयात्रा 'महिला सुरक्षा यात्रा' कुछ समय पहले दिल्ली महिला आयोग ने भी आयोजित की थी। इसमें तेजाब हमले की शिकार महिलाओं की पीड़ा और जद्दोजहद सामने आई थी। तेरह दिन की महिला सुरक्षा यात्रा में शामिल महिलाओं ने रोजाना करीब तीस किलोमीटर का सफर तय करते हुए दिल्ली की सड़कों और गलियों तक अपनी पीड़ा पहुंचाई। यह वाकई गौर करने वाली बात है कि सोशल मीडिया अभियानों के इस दौर में ऐसी बर्बरता का दंश झेल चुकी महिलाएं वास्तविक धरातल पर अपनी आवाज बुलंद करती नजर आ रही हैं। तेजाब हमले हों या यौन हिंसा के मामले, इन जघन्य अपराधों की पीड़िताएं बिना किसी डर, हिचक या परदे के न केवल इन यात्राओं में शामिल हुईं बल्कि अपनी आपबीती भी सुनाई ।

दरअसल, यौन शोषण के मामलों का सबसे दुखद पक्ष पीड़िता के प्रति सहयोगी और सम्मानजनक व्यवहार न रख कर उसे दोषी माने जाने की प्रवृत्ति का है। ऐसा ही सोच तेजाब हमले की शिकार महिलाओं को लेकर भी है। लेकिन गरिमा यात्रा और महिला सुरक्षा यात्रा में शामिल महिलाओं ने जिस मुखरता से आवाज उठाई और अपनी पीड़ा और पहचान को साझा किया, वह इस मानसिकता में बदलाव लाने वाला अहम कदम है। ऐसे मामलों को लेकर मुखर होना बताता है कि यह महिलाओं के लिए नहीं बल्कि उनके प्रति दुर्भाव की मानसिकता रखने वालों के लिए शर्म का विषय है। यही वजह है कि ऐसी घटनाओं की शिकार महिलाएं अब अपराधबोध नहीं पालतीं, बल्कि हौसले के साथ अपनी बात कह रही हैं।

महिला शोषण से जुड़े हर तरह के मामलों में यह सबसे प्रभावी बदलाव है। इसका असर अब सामाजिक-पारिवारिक परिवेश में भी देखने को मिल रहा है। लोगों ने कुछ हद तक अब स्त्री को दोष देने की बंधी-बंधाई लीक पर चलना छोड़ा है। ऐसी अफसोसनाक घटनाओं के बारे में कुछ कहने से पहले अब हर पहलू पर मानवीय सोच के साथ विचार किया जाने लगा है। असल में देखा जाए तो बदलाव की यह शुरुआत निर्भया मामले के बाद हुई है। समाज के इस सकारात्मक सहयोग और संबल ने निर्भया के माता-पिता का भी मनोबल बढ़ाया। लोग आक्रोशित हो सड़कों पर उतरे, निर्भया पर सवाल उठाने के लिए नहीं बल्कि आरोपियों को सजा दिलवाने के लिए। हाल के वर्षों में देखने में आया है कि ऐसी किसी भी घटना के बाद ज्यादातर मामलों में समाज का रुख सहयोगी और सकारात्मक रहा है। ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के बाद अब महिलाओं के पहनावे या घर से निकलने के समय पर नहीं बल्कि अपराधियों के दुस्साहस पर सवाल उठाए जाते हैं। इस बदलाव ने न्याय पाने की राह भी सुझाई है।

आंकड़े बताते हैं कि अब दुष्कर्म और छेड़छाड़ के मामलों में चुप बैठने के बजाय रिपोर्ट कर अपराधी को सबक सिखाने की राह चुनी जाती है। अब बलात्कार पीड़िताओं पर ही लांछन लगा देने की चली आ रही सोच को चुनौती दी जा रही है। महिलाएं भी सवाल उठा रही हैं कि उनके साथ हुए शोषण के लिए खुद वे ही जिम्मेदार क्यों ठहराई जा रही हैं? इन यात्राओं में महिलाओं का बिना किसी हिचक के अपनी गरिमा और अस्तित्व से जुड़े सवाल उठाना समाज के इस सहयोगी बर्ताव की ही बानगी है। सुखद यह भी है कि यह नई सोच उनके मन में भय की जगह अधिकार की बात ला रही है। मौजूदा समय में जब हमारी संवेदनाएं मरती जा रही

हैं और हर उम्र की महिलाएं ऐसी भयावह ज्यादतियों का शिकार बन रही हैं, तब ऐसे में यह बदलाव लैंगिक भेद मिटाने और स्त्री अस्मिता का मान करने वाला परिवेश बनाने की नई उम्मीद जगाता है।

सोशल मीडिया से लेकर असल दुनिया तक, महिलाएं अब स्थापित खांचों से बाहर आ रही हैं। इस खुलेपन में सबसे अहम बात उनका यह मानना और दूसरों से मनवाना है कि बिना किसी गलती के हम शर्मिंदा क्यों हों! शर्म और सजा तो उन अपराधियों के हिस्से आनी चाहिए जो आधी आबादी का मानवीय हक छीनते हैं। शर्मिंदा उन्हें होना चाहिए जो महिलाओं की सुरक्षा और समानता के उस हक पर डाका डालते हैं, जो इस देश की नागरिक होने के नाते उनका अधिकार है।

हमारे देश में सबसे ज्यादा बदलाव की दरकार समाज में मौजूद परंपराओं, रूढ़ियों और भेदभाव भरी मानसिकता की जकड़न को लेकर है। बेटे और बेटी में किए जाने वाले भेद की मानसिकता के चलते आज भी दूर-दराज के गांवों में बेटियों की शिक्षा और स्वास्थ्य को महत्त्व नहीं दिया जाता। आज भी हमारे परिवारों में महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को व्यवस्थागत समर्थन मिलता है। हर तरह की मुश्किलों से लड़ कर आगे बढ़ने वाली महिलाओं को कार्यस्थल पर भी कई बार अभद्रतापूर्ण व्यवहार झेलना पड़ता है। ऑक्सफेम इंडिया की ओर से करवाए गए एक सर्वे के मुताबिक भारत में सत्रह फीसद महिलाएं कार्यस्थल पर यौन शोषण का शिकार होती हैं। यह चौंकाने वाला आंकड़ा संगठित और असंगठित दोनों ही क्षेत्रों का है। घर हो या बाहर, इस दुर्व्यवहार की अहम वजह यही है कि आत्मसम्मान और सुरक्षा का मानवीय हक महिलाओं की झोली में कभी आया ही नहीं। ऐसे में अपने साथ होने वाले बर्बर व्यवहार के प्रति स्त्रियों की यह मुखरता बुनियादी बदलाव लाने की आस बंधाती है।

बीते साल सोशल मीडिया पर चला 'हैशटैग मी टू' अभियान भी इसी बात को पुख्ता करता है जिसके तहत हर उम्र, हर वर्ग की महिलाओं ने अपने साथ हुए यौन शोषण की बात साझा की। संसार के हर हिस्से की महिलाओं को जोड़ने वाले मी टू अभियान में देश, धर्म, जाति और समुदाय से परे दुनियाभर की महिलाओं ने यौन शोषण को लेकर अपनी चुप्प तोड़ी थी। विश्व के कोने-कोने से न केवल महिलाओं ने इस अभियान में हिस्सा लिया बल्कि यौन उत्पीड़न को लेकर कई खुलासे भी किए थे। यह हैशटैग एक समय में पिच्यासी देशों में ट्रेंड कर रहा था, जिसमें घरेलू हिंसा से लेकर कार्यस्थल पर शोषण तक की घटनाएं तक शामिल थीं। खुल कर अपनी बात कहने की बानगी बने इस अभियान में यही बात सामने आई कि हमारे साथ हुई बेहूदगी के लिए हम ही दोषी कैसे हैं? जबकि कठघरे में तो वे सरफिरे होने चाहिए जिनकी मानसिकता ही विकृत है। अनगिनत विरोधाभासों से जूझते हुए महिलाएं हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। सशक्त बनने के मोर्चे पर आधी आबादी ने साबित किया है कि वे स्वयंसिद्धा हैं। महिलाएं अब पूछने लगी हैं कि क्यों समाज में पीड़िता को कसूरवार बना दिया जाता है? ऐसे सवाल आधी आबादी को जबरन थोपी गई शर्मिंदगी के कुचक्र से निकाल कर सशक्त नागरिक बना रहे हैं।

सिमटते पुस्तकालय

सनुज यादव

दुनिया मेरे आगे

मैं दिल्ली के ढाका गांव में रहता हूं। यह मुखर्जी नगर से लगभग दो किलोमीटर दूर है, जो मुख्य रूप से सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी कराने के लिए कोचिंग संस्थानों का गढ़ माना जाता है। पिछले कुछ समय से मैं यहां एक नए तरीके की संस्था का उदय देख रहा हूं, जिसके मूल में केवल बाजारवाद है। यह है पुस्तकालय या लाइब्रेरी। यों पुस्तकालय के बारे में हम अपने स्कूली जीवन से सुनते आ रहे हैं, अक्सर उसमें पढ़ने का मौका भी मिला है और उसकी एक छवि हमने अपने मन में संजोई हुई है। मगर जिस तरीके से बाजार इस संस्था का स्वरूप और संरचना में बदलाव ला रहा है, वह सबके लिए विचारणीय होना चाहिए। शिक्षा संकाय का विद्यार्थी होने के नाते ऐसे संस्थानों की संकल्पना में हो रहे बदलाव को जानना और उन्हें समझना मेरे लिए जरूरी हो जाता है। एसआर रंगनाथन को हम सब भारत में पुस्तकालय विज्ञान के पिता के रूप में जानते हैं। उनके शब्दों में कहूं तो देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास में पुस्तकालयों का योगदान अहम होता है। लेकिन आजादी के बाद विकास के नाम पर जिस तरीके से सार्वजनिक पुस्तकालयों का गला घोंटा जा रहा है, वह चिंता का विषय है।

आज हमारे आसपास सार्वजनिक पुस्तकालय कम ही देखने को मिलते हैं। जो हैं भी, उनकी स्थिति काफी दयनीय है या वे अतिक्रमण का शिकार हैं। जब मुझे अपने कुछ दोस्तों से पता चला कि वे दिल्ली विश्वविद्यालय में नामांकन केवल कॉलेज की लाइब्रेरी की सुविधा यानी बैठ कर पढ़ने के लिए लेते हैं तो मुझे शुरुआत में उन दोस्तों पर गुस्सा आया। मगर जब वास्तविक हालात के मद्देनजर इस पर विचार किया तो पाया कि अन्य कई कारणों में एक यह भी है कि उनके घर के आसपास सार्वजनिक पुस्तकालयों का अभाव है। इनकी जगह ये नए तथाकथित पुस्तकालय अपनी जगह बना रहे हैं, जो पुस्तकालय के नाम पर एयरकंडीशन, वाई-फाई, लड़के-लडकियों के अलग अध्ययन कक्ष, चाय-कॉफी का इंतजाम, कैमरे से निगरानी आदि सुविधा देने का प्रचार करते हैं। इनके लिए अच्छी-खासी रकम शुल्क के तौर पर ली जाती है।

क्या हम इन्हें सही मायने में पुस्तकालय कह सकते हैं? मेरा मानना है कि पुस्तकालय वह जगह होती है, जो आपको स्वेच्छा से पढ़ने, लिखने, पुस्तकों के चुनाव की स्वतंत्रता प्रदान करती है। विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, शोध संस्थानों में पुस्तकालयों की भूमिका कितनी अहम है, यह हम सभी अच्छी तरह से जानते हैं। इनकी बढ़ती संख्या से मेरे मन में दो सवाल उठते हैं। पहला, इन इलाकों में इस प्रकार के पुस्तकालयों की स्थापना के पीछे क्या सोच रही होगी। दरअसल, जिस तेजी से शिक्षा का बाजारीकरण हुआ या हो रहा है, उस परिस्थिति में मुखर्जी नगर और आसपास के इलाकों में दिल्ली में दूरदराज के क्षेत्रों से आने वाले प्रतियोगियों की संख्या में अप्रत्याशित बढ़ोतरी हुई है। इसका एकमात्र कारण सरकारी नौकरी पाने की लालसा है। सरकारी नौकरी की इच्छा रखने में कुछ भी गलत नहीं है, मगर धीरे-धीरे सरकारी नौकरियों की संख्या कम होने के दौर में यह इच्छा रखने वाले लोगों के बीच प्रतियोगिता कठिन होती जा रही है। ऐसे में इस तरह की निजी दुकानें प्रतियोगियों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करती हैं कि वे उनके जरिए मुहैया कराई गई सुविधाओं का उपभोग करें, तभी अपनी तैयारी को अन्य प्रतियोगियों से अलग कर पाएंगे और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

जिस दौर में अर्थव्यवस्था ढलान पर है और नौकरियों की भारी कमी से हमारा देश जूझ रहा है, वहां पढ़ने वाले छात्र और छात्राएं सरकार से सार्वजनिक पुस्तकालयों की बदहाली पर बिना कोई सवाल किए इसे नवउदित व्यवस्था का हिस्सा बनाते जा रहे हैं। उनकी आंखों के सामने सार्वजनिक पुस्तकालयों का दायरा सिकुड़ता जा रहा है। दूसरा अहम सवाल यह है कि इन तरीकों के पुस्तकालय किस तरह के ज्ञान का सृजन कर रहे हैं?

आज हम सूचनाओं के दौर में जी रहे हैं। इन सूचनाओं से ज्ञान का सृजन और उस ज्ञान से बुद्धिमत्ता तक का सफर एक जटिल प्रक्रिया है। समाज में हरेक समुदाय के ज्ञान की सृजनशीलता को सराहना और उसको बाकी लोगों से साझा करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए पुस्तकालय एक सशक्त माध्यम है। मगर ये नए पुस्तकालय किताबों को छोड़ कर सारी सुविधाएं दे रहे हैं। तब ज्ञान का उत्पादन भी संकीर्ण मायने में ही हो पाता है, जिसका लाभ गिने-चुने लोगों को मिलता है। जबकि एक बेहतर समाज की संकल्पना वही हो सकती है, जब हम पुस्तकालय जैसी सामाजिक संस्था को उसके वास्तविक स्वरूप में बचा पाएंगे। पुस्तकालय आधुनिक समाज की रीढ़ की तरह हैं और इनकी अहमियत इनकी सार्वजनिक पहुंच होने में ही निहित है। इसे तोड़ने वाली व्यवस्था को बाजार के हवाले करने की साजिश से बचने की जरूरत है।

सपनों के सौदागर

गरीब समाज सपनों का सबसे बड़ा ग्राहक होता है। यही वजह है कि कवि, साहित्यकार, पत्रकार, फिल्मकार और नेता, सभी इन्हें सपने बेचने में मशगूल रहते हैं। इनमें फिल्मकार और नेताओं का स्थान इसलिए अग्रणी है कि वर्तमान समय में गरीबों को सपने बेच कर अथवा दिखाकर सर्वाधिक लाभ इन दोनों समूहों से जुड़े लोगों को होता है। आपको कुली फिल्म याद होगी। उसमें अमिताभ बच्चन को कुली की भूमिका निभाने के लिए जो धनराशि मिली होगी, उसके बारे में रेलवे का एक कुली कभी सोच भी नहीं सकता।

बहरहाल, कुली फिल्म को देखने में कुली और उनके जैसे मजदूर लोग सबसे आगे थे। वे खुश थे कि उनके समूह का एक इंसान परदे पर ही सही, पैसे वाले लोगों को नीचा दिखा रहा है। ऐसी एक नहीं, अनेक फिल्में बनी हैं और बनती रहेंगी। श्रीनगर का राजा टट्टू वाला मुंबई के करोड़पति सेठ की बेटी का शौहर बन सकता है (फिल्म - जब जब फूल खिले), लेखकों द्वारा ऐसी कहानियां लिखना और फिर उन पर फिल्म बनाना 'सपने बेचने' का एक और ज्वलंत उदाहरण है। करोड़पति सेठ की लड़की गरीब के लड़के से शादी करे या लड़का किसी झुग्गी बस्ती में रहने वाली लड़की के लिए अपने पिता से विद्रोह करे- एक ही बात है क्योंकि ऐसे सपनों को सबसे अधिक गरीब स्त्री-पुरुष खरीदते हैं।

राजनीति में भी अपने यहां ऐसा ही हो रहा है। पहले चाय वालों को सपने बेचे गए और इस बार चौकीदारों की बारी है। अगली बार भी आसानी से कोई समूह मिल जाएगा क्योंकि गरीबी तो दूर होने से रही! गरीबों को यह कहना कि मैं सत्ता तुम्हारे प्रतिनिधि बतौर हासिल करना चाहता हूं- अपने आप में एक मजाक लगता है लेकिन यह भी सच है कि अपने गरीब मजाक का कभी बुरा नहीं मानते हैं। वैसे नेता किसी भी दल का हो, वह गरीबों को सपने बेचने की पूरी कोशिश करता है। फर्क इतना है कि गरीब अकसर बीते वक्त के गरीब पर अधिक यकीन करता है क्योंकि भाईचारा हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है।

● *सुभाष चंद्र लखेड़ा, द्वारका, नई दिल्ली*

रणनीतिक कदम

कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी के वायनाड (केरल) से चुनाव लड़ने पर जितने मुंह उतनी बातें सुनने को मिल रही हैं। कोई भगोड़ा कह रहा है। कोई अमेठी में हार स्वीकार करना बतला रहा है। कोई कह रहा है कि अमेठी में कुछ काम किया नहीं इसलिए वे मुंह चुरा कर भाग रहे हैं। मगर ऐसा कहना ठीक नहीं है। दरअसल, यह एक सोचा-समझा रणनीतिक कदम है। बतौर पार्टी अध्यक्ष यह उनका पहला चुनाव है। जो पार्टी कभी 405 सीटें जीती थी वह आज 44 पर सिमट गई है। दक्षिण की मार्फत यह संदेश भी देने की कोशिश है कि 134 साल पुरानी पार्टी फिर से प्रतिस्पर्धा में लौटेगी।

कांग्रेस अपना खोया हुआ जनाधार वापस पाने को बेचैन है। इसीलिए महागठबंधन में होते हुए भी कई प्रदेशों में अकेले लड़ रही है। केरल साम्यवादी गुट इसका विरोध बेकार में कर रहा है।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*

अधूरा सपना

हमारे स्वाधीनता संग्राम के शहीद कैसे भारत का निर्माण करना चाहते थे और आज के हालात क्या हैं! आज के दौर के सबसे प्रासंगिक क्रांतिकारी विचारकों की सूची तैयार की जाए तो भगतसिंह उसमें आगे की पंक्ति में ही होंगे। भगतसिंह और उनके साथियों के लेखों-बयानों से पता चलता है कि उन्होंने ऐसा भारत बनाने का सपना देखा था जहां एक इंसान द्वारा दूसरे इंसान का शोषण न हो। शहीदों का कहना था कि आजादी का मतलब सिर्फ गोरी चमड़ी के लोगों से आजादी हासिल कर लेना नहीं है बल्कि वास्तविक आजादी तभी आ सकती है जब देश के मजदूरों, गरीब किसानों, नौजवानों, महिलाओं यानी हरेक दबे-कुचले वर्ग को हर प्रकार के शोषण से आजादी मिले। मतलब मेहनत करने वाले लोगों को उनकी मेहनत का पूरा हक मिले। लेकिन आज समाज में महंगाई, बेरोजगारी व गैर-बराबरी देख कर कह सकते हैं कि आजादी के 70 साल बाद भी भगतसिंह का सपना अधूरा है।

आज भी देश के मजदूर-किसान, जो इस दुनिया की सुई से लेकर जहाज तक, अनाज से लेकर कपास तक सारी सुख-सुविधा पैदा करते हैं, वे ही बदहाली की जिंदगी गुजारने को मजबूर हैं। हर साल हजारों अन्नदाता गरीब किसान कर्ज के बोझ के कारण आत्महत्या करने को मजबूर होते हैं। कॉलेजों-विश्वविद्यालयों की डिग्रियां लेकर युवा आबादी बेरोजगारों की फौज में खड़ी है। वहीं दूसरी तरफ नेता-मंत्री मेहनतकशों की कमाई पर ऐश करते हैं। अगर आम जनता शिक्षा, रोजगार व स्वास्थ्य जैसे बुनियादी हकों के लिए एकजुट होती है तो ये नेता हमें धर्म और जाति के नाम पर लड़ाते हैं। वहीं देश की मेहनत-मशक्कत करने वाली आबादी आधा पेट खाकर भी अपने बच्चों को पढ़ाती है पर उसके साथ सरकारें दगाबाजी कर रही हैं। भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरु के शहीदी दिवस सही मायने में उनके अधूरे सपनों को पूरा करने के संकल्प दिवस होने चाहिए।

● *अजय स्वामी, मुकुंद विहार, दिल्ली*

हमारा दायित्व

स्वस्थ लोकतंत्र सिर्फ बेहतर सरकार से नहीं चलता, उसके लिए जिम्मेदारी भरा समाज का भी होना चाहिए। स्वच्छ भारत अभियान पूर्ण रूप से सफल हुआ या नहीं यह एक अलग मुद्दा है। पर गांधीजी के बाद कोई तो ऐसा आया जिसने हमें फिर से स्वच्छता का महत्त्व समझाया वरना कितने लोग हैं जिन्हें पता है कि स्वच्छ भारत अभियान को 1999 से 2012 तक मूलतः निर्मल भारत अभियान और समग्र स्वच्छता अभियान के नाम से जाना जाता था। सिर्फ योजना बना देने से योजनाएं सफल हो जातीं तो हम आज दुनिया के सबसे विकसित देश होते। किसी भी योजना को सफल बनाने के लिए उसमें पूर्ण रूप से लगना पड़ता है उसे एक बड़े पैमाने पर प्रचारित-प्रसारित करना पड़ता है। उसमें लोगों का सहयोग आवश्यक होता है। यही कारण रहा कि आज स्वच्छ भारत अभियान बच्चों से लेकर बड़ों तक की जुबान पर चढ़ चुका है। इसी तरह 'मैं भी चौकीदार' नारे के चाहे जितने मतलब निकाले जाएं, चाहे जितना मजाक बनाया जाए पर इस नारे ने लोगों को देश के प्रति उनके मौलिक कर्तव्यों के बाबत जागरूक बनाया है, उन्हें अपनी राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी का एहसास कराया है जो कि पिछले कुछ सालों में हमारे भीतर धीरे-धीरे खत्म हो रही थी।

● *देवानंद राय, दिल्ली*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com